



विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK-64

वर्ष ९ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२३ • कार्तिक पूर्णिमा [शक] • दि. ४-११-१९७९ • अंक ५

विपश्यना

इसाई साध्वी भगिनी त्रिगिता

बम्बई से रेल द्वारा लगभग दो-ढाई घंटे की दूरी पर स्थित इगतपुरी गांव और गांव के ठीक बाहर "विपश्यना विश्व विद्यापीठ" है। यह अभी अपनी प्रारंभिक निर्माण-अवस्था में है। एक बड़ी इमारत के एक खण्ड में पाकशाला एवं भोजनालय तथा दूसरे में ध्यान कक्ष। कई सामूहिक शयनागार हैं। और कुछ मिट्टी तथा खपच्चियों की बनी कुटियाएं हैं जिनके नुकीले छप्परों के समूह विशाल पर्वत की विपरीत पृष्ठभूमि में नयनाभिराम चित्र प्रस्तुत करते हैं। आगे विस्तार की योजनाएं हैं। एक चैत्य जिसके हृद-गिर्द एक-एक साधक के लिए पृथक-पृथक ध्यानगुफा, एक विशाल हाल तथा संभवतः कुछ और आवासगृहों के लिए रेखांकन हो चुका है।

विपश्यना क्या है? कैसे बताऊँ? उसी विवरणिका के कुछ अंश उद्धृत करती हूँ जिसको सभी प्रत्याशित शिविरार्थियों को आवेदन करने से पहले भलीभांति समझ लेना होता है।

"विपश्यना" भारतवर्ष की अति प्राचीन ध्यान-शैलियों में से है। दीर्घकाल तक मानव समुदाय में आलोक रही इस विधि की गौतम बुद्ध ने २५०० वर्ष पुनः शोध की। विपश्यना का अर्थ है 'सच्चाई को उसके वास्तविक रूप में देखना। यह आत्मनिरीक्षण द्वारा आत्म-शोधन की विधि है। इसका आरंभ अपने स्वाभाविक श्वास के निरीक्षण से होता है जिससे कि चित्त एकाग्र होता है। इससे प्राप्त कुशाग्र जागरूकता द्वारा साधक अपने शरीर और मन के परिवर्तनशील स्वभाव का दर्शन करता हुआ अनित्य, दुःख और अनात्म के विश्व-सनीय सत्य का अनुभव करता है। प्रत्यक्ष अनुभूतिजन्य सत्य-दर्शन विशुद्धि का काम करता है। सारी की सारी विधि (धम्म) सभी सांसारिक समस्याओं के लिए सार्वजनिक औषधी है तथा इसका किसी भी व्यवस्थित मजहब अथवा संकीर्ण सांप्रदायिकता से कोई संबंध नहीं है। इसी कारण बिना जाति, वर्ण तथा मत-मतांतरों के भेद-भाव के सभी व्यक्तियों द्वारा किसी भी समय और किसी भी स्थान पर इस तकनीक का अभ्यास किया जा सकता है तथा यह भी समान रूपसे कामकारी सिद्ध होती है।

प्रशिक्षण काल पर्यंत साधक को अपने आचार्य के प्रति तथा

धम्म वाणी

निघाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

धम्मपद २६/२३

स्थावर व जंगम (चर व अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दण्ड त्याग किया है, (हिंसा त्याग ही है), जो न किसी की हत्या करता है, न हत्या करवाता है, उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

विपश्यना विधि, आचार-संहिता, समय-सारिणी आदि संबंधी सभी नियम-व्यवस्थितियों के प्रति पूर्णतया समर्पण करना होता है। यह परमावश्यक है कि शिविर-काल में सभी प्रकार के कर्मकांड, अनुष्ठान, धूप-दीप आदि का प्रयोग, मालासुमिरन, मंत्रोच्चार, भजन-कीर्तन, प्रार्थनाएं आदि सभी क्रियाएं संपूर्णरूप से स्थगित कर दी जाय। साधकों को शिविर-प्रारंभ से लेकर दसवें दिन के प्राप्तः ६:३० बजे तक आर्यमौन पालन करना अनिवार्य है। उन्हें संपूर्ण प्रशिक्षणकाल पर्यंत विद्यापीठ में ही रहना होता है। वे अपने आचार्य की विशेष अनुमति से ही शिविर छोड़ सकते हैं। मुलाकातियों, टेलीफोन करने वालों तथा पत्रों आदि से संपर्क तोड़ देना होता है। धूम्रपान की अनुमति नहीं होती। किसी भी प्रकार की पठन एवं लेखन सामग्री, यहां तक कि धर्म-ग्रंथ भी, विद्यापीठ में नहीं लाने चाहिए। लिखने-पढ़ने पर रोक इस ध्यान-विधि के अति नियम-निष्ठ व्यवहारिक पक्ष पर बल देने के लिए है।

धर्म-प्रशिक्षण नितांतरूप से निःशुल्क है। भोजन-आवास एवं व्यवस्था संबंधी सारे व्यय पूर्व साधकों के दान से चलते हैं। लाभान्वित होने पर संतुष्ट अवस्था में आभार तथा सद्भाव प्रदर्शन के रूप में औरों के हितार्थ अपनी भद्रा तथा सामर्थ्य के अनुरूप देनेवाले साधकों से ही दान स्वीकार किया जाता है।

प्रातः चार बजे से रात दस बजे तक की समय-सारिणी अत्यंत व्यस्त रखने वाली है। बीच-बीच में नास्ते-भोजन तथा विश्राम के लिए आवश्यक अवकाश है।

संसार के विभिन्न भागों से आए १५० स्त्री-पुरुषों में से एक में जब विगत दिसम्बर के शिविर में भाग लेने इगतपुरी गई तो मन

में थोड़ी घबराहट सी थी। यह अंग्रेजी भाषी शिविर था और दो तिहाई शिविरार्थी अंग्रेजी भाषी दुनिया से आए थे। अधिकांश मध्य बीसी से लेकर प्रारंभिक तीसी की आयु के थे जो भारत में आध्यात्मिक शिक्षा की खोज में आए थे, जिसको कि वे अपने देश के गिरजाघरों से प्राप्त करने में असफल रहे थे। कुछ तो वर्षों से इसकी खोज में थे तथा संसार के विभिन्न भागों में चलते ऐसे सत्रों में बार-बार मिलते रहे थे। बाकियों में वे पुराने साधक थे जो इससे पहले भी एक या अधिक विषयना - शिविरों में भाग ले चुके थे और नियमित दैनिक अभ्यास करते थे। इनके विषय में ऐसा लगता था कि जिसकी उन्हें खोज थी वह प्राप्त हो चुकी है। इनमें से कुछ ऐसे थे जिनके चेहरों पर गहन आध्यात्मिकता छलकती थी।

इस साधना का वर्णन किया जा सकता है किन्तु इसे पढ़कर सीखा नहीं जा सकता। इसके लिए गुरुद्वारा आनुक्रमिक दीक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त घंटों तक दैनिक अभ्यास की भी अपनी विशेष उपादेयता है। एक और महिलाएं और दूसरी और पुरुषों में विभाजित ध्यान-कक्षा के बड़े हाल में हम लोग पाल्थी मारकर आसनों पर प्रतिदिन १२-१२ घंटे ध्यान में बिताते थे। वैसे थक जाने पर यदि आवश्यक हो तो बीच-बीच में हमें थोड़ा आराम कर लेने की छूट भी थी। प्रति सायंकाल 'धर्म-चर्चा' होती थी जिसमें आगामी दिन के लिए ध्यान संबंधी निदेश दिए जाते तथा विधी का सिद्धान्त पक्ष समझाया जाता था। तीन दिनों तक तो हम स्वास तथा नाक और ऊपरी होठ के क्षेत्र में होने वाली संवेदनाओं पर मन लगाते रहे। फिर वास्तविक विषयना की दीक्षा मिली। सिर से लेकर पांव की उंगलियों तक एक स्वीकृत क्रमानुसार शरीर के विभिन्न भागों में चाहे जैसी भी संवेदना हो, धीमी क्रमबद्ध गतिसे उसका पर्यावलोकन करना पड़ता था। प्रारंभ में यह बड़ा कठिन-श्रमसाध्य काम लगा। परन्तु आगामी दिनों में इस मूलभूत क्रिया के कई परिमार्जित एवं परिवर्तित रूप सीखे। मन इतना संवेदनशील हो उठा कि अब हमें शरीर के किसी छोटे से भाग पर एकाग्र करने को कहा जाता तो उस स्थान पर संवेदना का तुरंत अनुभव होने लगता। सातवें या आठवें दिन हमसे कहा गया कि शिविर के बाकी बचे दिनों में हम सारे दिन ध्यान के अतिरिक्त और जो कुछ भी करें उसके प्रति भी जागरूक रहने का अभ्यास करें।

प्रतिदिन हमें नाम ले-लेकर एकाकी अथवा छोटे-छोटे समूहों में गुरुजी के चरणों में बैठाया जाता। प्रत्येक से अपनी पारी आने पर ध्यान-काल में होने वाली संवेदनाओं के विषय में प्रश्न पूछे जाते और उचित परामर्श दिए जाते। फिर हम शांतिपूर्वक उनके साथ ध्यान करते, जबकि वे हमारे प्रकम्पनों में सम्मिलित होकर हमें सहारा देते।

अंतीम दिन हमें सिखाया गया कि अबसे हम प्रत्येक ध्यान की समाप्ति पर मैत्री-भावना करें। पर इससे पूर्व हमें आत्म-निरीक्षण करके देख लेना चाहिए कि हम विद्वेष तथा तनाओं से मुक्त हैं और तभी सारे विश्व के प्रति प्रेम और सद्भावना की तरंग प्रसारित करनी चाहिए।

बौद्ध लोग व्यक्तिगत ईश्वर में विश्वास नहीं करते। किन्तु उनका धर्म में विश्वास है जो संसार का श्रेष्ठ मूल तत्व कहा जा सकता है। धर्म के शाब्दिक अर्थ हैं मार्ग, विधि, नियम, कानून, ऋतु। जिस प्रकार गुरुजी ने इसे प्रस्तुत किया उससे लगा यह कोई अनमोल रत्न है जो स्वयं भी ग्रहण करने योग्य है तथा औरों को बांटने योग्य है। वह इसे विश्व का विधान कहते थे, क्योंकि यह विश्वव्यापी तत्व है और इस पर किसी संप्रदाय अथवा मत-मतांतर का एकाधिकार नहीं है। जिसका मन और हृदय पवित्र हो वही सही माने में इसमें स्थापित है। मानव की आंतरिक विशुद्धता ही विषयना ध्यान का वास्तविक उद्देश्य है। हमारे बोध एवं विकास का अवरोधक पाप ही है और यह एक भयावह सत्य है। इस संबंध में गुरुजी का चित्रण बड़ा ही सजीव होता था। कोई बात हुई जो हमें प्रिय नहीं लगी और इसे लेकर हृदय में गांठ बांध ली। प्रतिदिन ये गांठ बढ़ाते जाते हैं और इनकी एक उलझनभरी अपावन गुत्थी बन जाती है। हमारे सारे विचार वचन और कर्म इसी उलझाव में से निकलते हैं। अतः हम किसी परिस्थिति में अपने पवित्र मंतव्यों के अनुसार कर्म करने को स्वतंत्र नहीं रहते, बल्कि अपने व अतीत के अनुभवजन्य भय और पीड़ाओं के संग्रहों के आधार पर अंध-प्रतिक्रिया करने के लिए विवश हो जाते हैं। इसी को हिन्दु कर्म कहते हैं और बौद्ध संस्कार। यह कारण-परिणामी संलक्षणा, जिससे छुटकारा पाने में हम असमर्थ रहते हैं। हमें इसी मुक्ती की आवश्यकता है। यहां ईसाइयों और बौद्धों में मतभेद प्रतिष्ठित होता है। क्योंकि ईसाई एक त्राणकर्ता में विश्वास करते हैं, जिसने हमें मुक्त किया है। जबकि बौद्धों का विश्वास है कि हमारे अपने परिश्रम से ही इस ध्येय की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु भेद कदाचित् इतना बड़ा नहीं है। "अपनी मुक्ति स्वयं करो" (फिलिपियन्स २-१२) गुरुजी इस धर्म-वाक्य का बार-बार उद्धरण करते हैं और सचमुच यदि हम ईसामसीह की शिक्षाओं को गंभीरता से लें तो स्पष्ट ही बाइबल इसाइयों से घोर परिश्रम की अपेक्षा करती है। क्या चैस्टरटन ने नहीं कहा कि "इसाइयत को परखकर किसी ने इसे निरर्थक नहीं साबित किया। इसे कष्टसाध्य पाया गया अतः परखा ही नहीं गया।" दूसरी ओर गुरुजीने यह भी बताया कि जब साधक गंभीरता से अपनी परिशुद्धी का काम आरंभ कर देता है तो विश्व की सारी दृश्य-अदृश्य शुभ शक्तियां उसकी सहायता करने आ जाती हैं।

उन्होंने बताया कि सारे दुःख की जड़ व्यक्ति के राग और द्वेष में निहित है। उसे कुछ अच्छा लगता है और वह तुरंत इस सुख को बनाए रखने के लिए राग-रंजित हो उठता है और यही मन, वचन, कर्म के पाप का कारण बनता है। उसे कुछ बुरा लगता है और उसे दूर करने का प्रयास करता है और फिर ऐसा ही परिणाम होता है। मानव के सारे दुःख यहीं से प्रारंभ होते हैं। हमें बताया गया कि ध्यान के समय जो कुछ भी अनुभव हो — पीड़ा, असुविधा, सुख, क्षोभ — उसे शरीर और मन की वास्तविकता मानकर उपेक्षाभाव से स्वीकार कर समता में स्थित रहें। वास्तव में इसके अतिरिक्त कुछ किया भी नहीं जा सकता। इसके विपरीत यदि पीड़ा से रुढ़ें तो पीड़ा को बढ़ाना ही होता है। जैसे

शारीरिक पीड़ा के साथ मानसिक पीड़ा बढ़ा लेना। जबकि पीड़ा को स्वीकार कर लेने से या तो पीड़ा पीड़ा जैसी नहीं लगती अथवा झेलने योग्य हो जाती है। गुरुजी ने बुद्ध के जीवन से एक प्रभाव-शाली दृष्टांत दिया। उनके बढ़ते प्रभाव के कारण किसी ईर्ष्यालु विरोधी ने उन्हें गालियां दी, अपमानित किया और उन पर लॉछन लगाए पर वे अविचलित रहे, क्रुद्ध नहीं हुए। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया, “तुमने जो गालियां दी वह मैंने स्वीकार ही नहीं की। तुम्हारी चीज तुम्हारे पास ही रही।”

गुरुजी के होठों पर ‘अनिच्च’ (अनित्य, परिवर्तनशील) शब्द अधिकतर बना रहता है। हमें अपने शरीर में सतत होने वाले परिवर्तनों के प्रति सदा जागरूक रहना है। प्रत्येक संवेदना किसी न किसी परिवर्तन की द्योतक है। सारी वस्तुएं बदल रही हैं। हम प्रतिक्षण अपने चारों ओर विद्यमान विश्व से परमाणु ग्रहण करते रहते हैं तथा इसी परिमाण में निरंतर बाहर विसर्जन भी करते रहते हैं। कोई ऐसी स्थिरता कहीं नहीं है जिसे ‘मैं’ या ‘आत्मा’ कहा जाय। हम वायु हैं जो श्वास द्वारा लेते हैं। भोजन हैं जो खाते हैं। सारे भौतिक पदार्थ ऊर्जा ही हैं। मन और तन सतत परिवर्तन-शील विद्युत-तरंगी कणों का बनाब हैं। मैं पांच वर्ष पूर्व का वही भौतिक प्राणी नहीं हूँ। मनोवैज्ञानिक स्तर पर तो “मैं” और भी अस्थिर है। क्योंकि चित्तवृत्तियों के व्यवहार विद्युतगति से बदलते रहते हैं।

क्या मेरे बुरे दिन चल रहे हैं? अनिच्च! बदल जायेंगे। क्या जीवन बहुत अच्छा है? अनिच्च! यह भी सदा रहने वाला नहीं है। इस प्रकार के प्रशिक्षण को मन में बैठा लेना अवरणीय वर्तमान को स्वीकारना है।

वर्तमान क्षण के प्रति जागरूक रहना इस ध्यान का एक प्रमुख उद्देश्य है। शारीरिक संवेदना ही वास्तव में इस क्षण की विद्यमानता है। अतीत की तो केवल याददाश्त रहती है और भविष्य काल्पनिक है। मात्र वर्तमान ही सत्य है। हमारे उच्छृंखल विचार तथा कल्पनाएं अतीत से अनागत की ओर अथवा भविष्य से भूत की ओर अधिर गति से भ्रमणशील हैं। किन्तु इश्वर न तो अतीत में है, न भविष्य में। वह तो इस क्षण में, वर्तमान में विद्यमान है। ऐसा नहीं कि हम भूत को याद न रखें अथवा भविष्य की योजनाएं ही न बनाएं। यह क्षमता तो मानव के लिए अमूल्य उपहार स्वरूप है। किंतु यह सब हम अपने स्वतंत्र चुनाव से कर पावें, अपने विकल्प विचारों के हाथों में पड़े निरीह शिकार की भांति नहीं।

प्रस्थान की प्रातःबेला में हमें बताया गया कि हमारी विपश्यना की दीक्षा पूरी हुई। अब यह हम पर है कि चाहें तो पूर्ण मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। क्योंकि अब तक जो हमने किया है वह वास्तव में अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी, है छोटा सा पहला कदम ही। प्रगति चालू रखने के लिए न्यूनतम आवश्यकताएं हैं—

- १) सुबह-शाम एक-एक घंटे का नियमित ध्यान।
- २) रात्रि में नींद से पूर्व एवं प्रातः जागते ही ५ मिनट जागरूकता का अभ्यास एवं दिन भर में जहां, जब, जितना संभव हो।

- ३) वर्ष में कम से कम एक बार दस दिवसीय विपश्यना शिविर — चाहे। शिविरों में भाग लेकर अथवा स्वयं-शिविर लगाकर।

यह कार्यक्रम भारी लगता है किंतु मुझे विश्वास है कि इनमें से बहुतेरे युवा व्यक्ति इसी कार्यक्रम के अनुसार कार्यरत हैं तथा और भी उनके साथ हो लेंगे। वास्तव में कुछ तो इतने उत्सुक थे कि उन्होंने तुरंत ही रुक कर वहीं एक स्वयं-शिविर में सम्मिलित होने की प्रार्थना की कुछ साधक वर्ष में कम से दो-तीन शिविरों में भाग लेंगे, ऐसा लगा। एक युवक से मैं बाद में मिली तो उसने बताया कि वह अब तक ऐसे १२ शिविर कर चुका है। मुझे यहां व्यक्ति-पूजा के खतरे की आशंका हुई। यद्यपि गुरुजी स्वयं इसको प्रोत्साहित करते नहीं लगे। गुरुजी अत्यंत विवेकशक्ति-संपन्न तथा प्रत्युत्पन्न परिहासकला में दक्ष एक आकर्षक व्यक्ति हैं। साधकों से अत्यधिक परिश्रम करते हुए भी मुझे वे सचमुच कृष्णशील और अत्यंत ज्ञानी लगे। जब वे एक लड़के ने उनसे यौन-संबंध के विषय में प्रश्न किया तो उन्होंने स्पष्टरूप से कहा कि शारीरिक संबंध एक पुरुष एक नारी तक सीमित रखना चाहिए और वह भी दोनों के परिपक्व हो जाने पर दोनों की पारस्परिक सहमति द्वारा शीघ्र से शीघ्र बंद हो जाना चाहिए। बीच-बीच में विनोदी उपाख्यानों से श्रोताओं को हर्षित करते रहने पर भी उनके धर्म-प्रवचन गंभीर रूप से सारगर्भित होते थे। ध्यान के समय वह कभी-कभी बौद्धों की पुरानी भाषा पाली की गाथाएं गाते थे। उस समय उनका स्वर कंठ के बजाय नाभि से उठता प्रतीत होता था। निस्संदेह हम उन शब्दों के अर्थ नहीं समझते थे, परंतु उनके कथनानुसार हम जैसे-जैसे पकते जायेंगे, उन प्रकम्पनों से अधिकाधिक लाभान्वित होते जायेंगे।

शिविरारथियों में मेरे अतिरिक्त दो और ईसाई साध्वियां थीं और मुझे बाद में पता लगा कि कुछ पादरी भी थे। हम सभी वातावरण से मेल खाते परिधानों में थे क्योंकि किसी भी भांति का सांप्रदायिक पहनावा ऐसे माहौल में अनुपयुक्त होता। भारत का कैथोलिक समाज विपश्यना में बड़ी गहरी रुचि लेता दिखाई दे रहा है। विशेषरूप से जिस्सुइस्ट लोग बड़ी संख्या में पादरियों को विपश्यना-प्रशिक्षण में भाग लेने के शिविरों में भेजते रहते हैं।

सारे विश्व के जीवन्त प्राणियों को शांति और कृष्णा प्राप्त हो। सुखी हों। सुखी हों !! सुखी हों !!!

श्री बद्रीप्रसाद पालीवाल ‘न्यू फायर’ के शिशिर द्वारा अनुवादित एवं संक्षिप्तिकृत। १९७८ के अंक से साभार उद्धृत।

मां सयामा

पूर्व सूचना के अनुसार मां सयामा हैद्राबाद के जनवरी शिविर के पूर्व वहाँ दिसंबर में दो शिविर दे सकेंगी। जब की शिविरोपरान्त जयपुर में केवल एक ही शिविर दे पायेंगी। कृपया साधक इसे नोट करेंगे।

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक : १६८ इगतपुरी (वि. वि. वि.) दि. १४-११-७९ से २५-११-७९ तक (हिंदी)

” १६९ ” ” दि. ४-१२-७९ से १५-१२-७९ तक (अंग्रेजी)

” १७० ” ” दि. २१-१२-७९ से १-१-८० तक (हिंदी)

सम्पर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, घम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३ (नासिक महाराष्ट्र) फोन : इगतपुरी ७६.

शिविर क्रमांक : १७१ हैद्राबाद (वि. अं. सा. कें.) दि. ४-१-८० से १४-१-८० तक (हिंदी)

सम्पर्क : श्री. रतीलाल एम. मेहता द्वारा विपश्यना अन्तरराष्ट्रीय साधना केन्द्र, कुसुम नगर, हैद्राबाद-५०००३५ (ऑ. प्र.) फोन ५९२५९

पुण्य पुरुषी का स्वयं-शिविर : इगतपुरी दि. १९-१-८० से ३०-१-८० तक (प्रतिबंधित) (केवल स्वीकृति-प्राप्त पुराने साधकों के लिए)

शिविर क्रमांक : १७२ इगतपुरी (वि. वि. वि.) दि. १-२-८० से १२-२-८० तक (अंग्रेजी)

सूचना : १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर-व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी-प्रवचन सुनने लिए हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहती है।

३) शिविरो के नियम कहे होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

दूहा धरम रा

धरम न दूजो हू सकै धरम सनातन एक ।
मतमतान्तरां स्रं बण्या, मिथ्या धरम अनेक ॥
पाली संस्कृत हीबर, अरबी बोलै कोय ।
भासा हूवै भिन्न पर, भाव धरम रो होय ॥
रंग गाय रो भिन्न है, दूध भिन्न ना होय ।
सम्प्रदाय हूवै जुदा, धरम जुडा ना होय ॥
जितनी जितनी बोधि है, उतनो उतनो बुद्ध ।
जितनी जितनी सोधि है, उतनो सज्जन सुद्ध ॥
सज्जन रो संगत मिलै, मिलै धरम अनमोल ।
मिनख जमारो सुधरज्या, सुफल हूवै या खोल ॥
आ तो गंगा निरमली, हूवै मुक्त नहाय ।
धरम न की कै बाप को, जो धारै सो पाय ॥

दोहे धरम के

धन्य ! धन्य ! ईसामसीह ! मैत्री करुणागार ।
तेरे जीवन में भरा, सुद्ध प्यार ही प्यार ॥
सम्प्रदाय से सन्त की होवे ना पहचान ।
जिसके मन मैत्री जगे, वह ही सन्त सुजान ॥
तिपिटक हो या बाइबल, गीता होय कुरान ।
बोधि वचन होवे जहां, बुद्ध वचन ही जान ॥
मन्द मन्द अमृत करे, बुद्ध वचन अनमोल ।
आधि व्याधि आहत जगत, दी संजीवन घोल ॥
भाषा बोली भिन्न है, सार तत्त्व तो एक ।
धर्म विश्व का एक ही, दर्शन हुए अनेक ॥
सुद्ध धर्म करता नही, सम्प्रदाय के भेद ।
सब को ही निर्मल करे, होने स्याह सुफेद ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्टे,

बम्बई २३. टेलीफोन : ३१३५१०. • मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलीफोन ८२५१ •

पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ४००/-, चौथाई पृष्ठ रु. २००/- • वार्षिक शुल्क रु. ५/-, आजीवन शुल्क रु. ५१/-

“विपश्यना”

पो. रजि. नं. NSK-64

प्रेषक :

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट

विपश्यना विश्व विद्यापीठ

घम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.

(नासिक, महाराष्ट्र)

To

License No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

शिविर क्रमांक : १६७ जयपुर (वि. के.) दि. २७-१०-७९ से ६-११-७९ तक (हिंदी)

संपर्क श्री. श्यामसुंदर मूंदडा, द्वारा विपश्यना समिति, जी -१/ए, अशोक मार्ग, जयपुर ३०२००१ फोन कार्या. : ५५४१४ घर : ६३३२२